आंध्र प्रदेश राज्य

बनाम

ए.एस. पीटर

दिसम्बर 13 2007

एस. बी. सिन्हा एवं लोकेश्वर सिंह पंता जे.जे.

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973

धारा 36 व 482 - अग्रिम अनुसंधान- मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति नहीं लेने को चुनौति - अभिनिर्धारित- कानून यह अनिवार्य नहीं करता कि अग्रिम अनुसंधान के लिए मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति ली जाये- यहां तक कि आरोप पत्र दाखिल होने के बाद भी आगे ओर अनुसंधान करना पुलिस का वैधानिक अधिकार है- सी आई डी द्वारा की गई जांच को एक अलग संस्था द्वारा की गई जांच के रूप में नहीं कहा जा सकता- सी आई डी राज्य की जांच संस्था का एक हिस्सा है- उच्च न्यायालय का दाण्डिक कार्यवाहियों को समाप्त करने का आदेश अपास्त - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482

एक प्रथम सूचना रिपोर्ट अन्तर्गत धारा 199 200 और 204 भा. द. सं. की इस आधार पर दर्ज कराई गई कि प्रत्यर्थी ने अपनी गोदाम के स्टॉक को दर्शाने की मिथ्या उद्घोषणा की जिसे बीमित होना बताया और

जो आग से जल गया था और अवैद्य लाभ प्राप्त करने के लिए क्लेम को बढाकर बताया अनुसंधान पूर्ण करने के पश्चात आरोप पत्र न्यायालय अतिरिक्त मुंसिफ मजिस्ट्रेट तिरूपति में पेश किया गया। इसके पश्चात स्थानीय पुलिस द्वारा किये गये अनुसंधान के तरीके पर दोषारोपण करने से अतिरिक्त महानिदेषक पुलिस सीआईडी ने मामले को अग्रिम अनुसंधान के लिए पुलिस निरीक्षक सीआईडी को सौंपा। एक अतिरिक्त आरोप पत्र प्रत्यर्थी ओर दो अन्य के विरूद्ध अतिरिक्त मुंसिफ मजिस्ट्रेट चित्तूर की अदालत में पेश किया गया। प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक प्रार्थना पत्र दाण्डिक कार्यवाही को समाप्त करने का इस आधार पर पेश किया कि अग्रिम अनुसंधान करने के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति नहीं ली गई और अग्रिम अनुसंधान पूर्णतया मिन्न जांच संस्था द्वारा किया गया है। उच्च न्यायालय ने प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जिससे व्यथित होकर राज्य ने तत्काल यह अपील दायर की।

अपील को मंजूर करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया-

1.1 निःसंदेह विधि में अग्रिम अनुसंधान के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य नहीं किया गया है। यहां तक कि आरोप पत्र दाखिल करने के पश्चात भी अग्रिम अनुसंधान करना पुलिस का वैधानिक अधिकार है। अग्रिम अनुसंधान एवं पुनः अनुसंधान में एक अन्तर भी मौजूद है। जहां पूर्व अनुमति के बिना पुनः अनुसंधान अनिवार्य रूप से निषिद्ध है, अग्रिम अनुसंधान में नहीं है। (पैरा-5 521-सी डी)

1.2 यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां अनुसंधान एक अलग षडयंत्र के सम्बन्ध में किया गया हो। जिस तरह के आरोप स्थानीय पुलिस अधिकारी के विरूद्ध अनुसंधान के तरीके व माध्यम के सम्बन्ध में लगाये गये तथा अग्रिम अनुसंधान का निर्देश दिया गया था इसकी जानकारी न्यायालय को दी गई थी। यद्यपि कोई स्पष्ट अनुमति नहीं दी गई थी लेकिन जाहिर है ऐसी अनुमति आवश्यक निहितार्थ दी गई थी जैसे मजिस्ट्रेट ने मामले की अग्रिम कार्यवाही को स्थगित कर कर दिया था। यह ऐसा मामला भी नहीं है जहां दो आरोप पत्र दो विभिन्न न्यायालयों में पेश किया गया हो। जिन मामलों का अनुसंधान सीआईडी द्वारा किया गया था उनकी सुनवाई के लिए निर्दिष्ट न्यायालय चित्तूर में स्थित है। ऐसी स्थिति में सत्र न्यायाधीष ने तिरूपति न्यायालय में लम्बित मामले को भी चित्तूर में निर्दिष्ट न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया और चित्तूर न्यायालय द्वारा ओर अपराध के लिए भी प्रसंज्ञान लिया गया था। (पैरा-12 524- बी सी डी ई)

आर. पी. कपूर और अन्य बनाम सरदार प्रताप सिंह कैरों व अन्य (1961) 2 एससीआर 143 पर भरोसा किया।

स्टेट ऑफ बिहार व अन्य बनाम जे.ए.सी. सलदान्हा और अन्य (1980) 1 एससीसी 554 और उपकार सिंह बनाम वेदप्रकाश (2004) 13 एस सी सी 292 पर भरोसा किया।

2. मौजूदा प्रकरण में यह नहीं कहा जा सकता कि अनुसंधान किसी

अलग संस्था ने किया हो। सीआईडी राज्य की अनुसंधान प्राधिकरणों का ही हिस्सा है। अग्रिम अनुसंधान के निर्देश अतिरिक्त महानिदेषक पुलिस द्वारा दिया गया था। दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 36 एक पुलिस अधिकारी को जो किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी से वरिष्ठ रैंक का हो पूरे स्थानीय क्षेत्र में समान शक्तियों का प्रयोग करने को सशक्त बनाती है जहां वे नियुक्त है और जैसा कि ऐसे अधिकारियों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। इसलिये यह उच्च अधिकारी के लिए अनुमत था कि वह मामले का अग्रिम अनुसंधान करने का निर्देश करे। पैरा-7 और 8 522- ए बी सी

रामलाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रषासन 1979 2 एससीसी 322 अन्तर किया गया।

के चंद्रशेखर बनाम केरल राज्य और अन्य 1998 5 एससीसी 223 अनुपयुक्त ठहराया गया।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपील संख्या 1119/2004

आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद के आपराधिक याचिका संख्या 3955/2000 में अंतिम निर्णय व आदेश दिनांकित 03.10.2002 से।

अपीलार्थी के लिए डी भारती रेड्डी

प्रत्यर्थी के लिए नगेन्द्रराय ए.वी.राव परनम प्रभाकर और वैंकटेश्वर राव अनुमोल।

न्यायालय का निर्णय इसके द्वारा दिया गया था।

एस. बी. सिन्हा, जे.

1. हमारे समक्ष आंद्रप्रदेश राज्य व्यथित है और उच्च न्यायालय आंद्रप्रदेश के द्वारा आपराधिक याचिका संख्या 3955 सन् 2005 के निर्णय व आदेश दिनांकित 03.10.2002 से असन्तुष्ट है जिसमें यहां प्रत्यर्थी द्वारा फाईल की गई आपराधिक पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति दी गई है।

2. प्रत्यर्थी (अभियुक्त नं. 1) रेड सैंडर्स दृढ लकडी का व्यवसाय करता है और उसका चित्तूर जिले के रेनिगुंटा में एक गोदाम है। 28/29.06.1996 को इस गोदाम में आग लग गई जिसके परिणामस्वरूप रैड सैंडर्स हार्ड वुड नंगी लकडियां और नौ कटिंग मशीनें नष्ट हो गई।

वह गोदाम बीमाकृत थी। सम्बन्धित वन अधिकारी ने थाने में सूचना दी कि प्रत्यर्थी ने गोदाम में दर्शाए गये स्टॉक के सम्बन्ध में गलत उद्घोषणा की है और अवैध लाभ कमाने के लिए उसे बढा-चढाकर बताया है। इस पर एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। सम्बन्धित मजिस्ट्रेट से अनुमति लेकर अनुसंधान किया गया। अनुसंधान पूर्ण होने पर आरोप पत्र अपराध अन्तर्गत धारा 199, 200 और 200 भारतीय दण्ड संहिता के तहत अतिरिक्त मुसिंफ मजिस्ट्रेट, तृतीय, तिरूपति के न्यायालय में पेश किया गया। इसके पश्चात हालांकि स्थानीय पुलिस के द्वारा किये गये अनुसंधान के तरीके के विरूद्ध आरोप लगाये गये थे तब अतिरिक्त महानिदेशक पुलिस

सी आई डी ने 05.11.1997 को मामले को अग्रिम अनुसंधान के लिए पुलिस निरीक्षक सीआईडी प्रकाशम जिले को सौंप दिया।

उक्त अनुसंधान को करने से पहले पुलिस निरीक्षक सी आई डी ने उक्त न्यायालय के समक्ष एक ज्ञापन दायर कर प्रार्थना की कि मामले को स्थगित किया जाये। यद्यपि यह नहीं प्रकट होता है कि अग्रिम अनुसंधान करने के लिए न्यायालय द्वारा कोई स्पष्ट अनुमति दी गई थी उक्त ज्ञापन के संदर्भ में स्थगन की प्रार्थना अनुमत की गई। अग्रिम अनुसंधान किया गया तत्पश्चात एक अतिरिक्त आरोप पत्र अन्तर्गत धारा 199 200 204 और 120 भारतीय दण्ड संहिता के अपराधों के लिए अतिरिक्त मुसिंफ मजिस्ट्रेट चतुर्थ चित्तुर के न्यायालय में अभियुक्त संख्या 1 से 3 के विरूद्ध दायर किया। आरोप पत्र में आरोपियों की श्रेणी में ओर भी अभियुक्त व्यक्ति जोड़े गये। निर्विवाद रूप से प्रकरण को तिरूपति न्यायालय से निर्दिष्ट न्यायालय चित्तूर में स्थानान्तरित कर दिया गया था।

प्रत्यर्थी ने अन्य आधारों के साथ-साथ इस आधार पर आपराधिक कार्यवाहियों को रद्ध करने के लिए आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन किया कि अग्रिम अनुसंधान के लिए मजिस्ट्रेट से पूर्व अनुमति नहीं ली गई थी और इस आधार पर भी कि यह अनुसंधान पूर्णतया अलग जांच ऐजेन्सी द्वारा संचालित किया गया था।

उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश के आधार पर उक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया।

3. अपील के समर्थन में अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्रीमती डी. भारती रेड्डी ने तर्क प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने यह मत लेने में स्पष्ट त्रुटि की है कि प्रश्नगत अनुसंधान एक नवीन अनुसंधान था या अनुसंधान अधिकारी के लिए यह आज्ञापक था कि वह सम्बन्धित मजिस्ट्रेट से इसकी स्पष्ट अनुमति प्राप्त करता। इस न्यायालय के निर्णय रामलाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन (1979) 2 एससीसी 322 और के चन्द्रशेखर बनाम केरल राज्य व अन्य (1998) 5 एससीसी 223 में जिन पर उच्च न्यायालय ने भरोसा किया है। श्रीमती रेड्डी का तर्क है कि वे इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते है।

4. दूसरी ओर प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री नगेन्द्र राय ने तर्क प्रस्तुत किया कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि न केवल पुनः अनुसंधान एक अलग जांच ऐजेन्सी द्वारा किया गया बल्कि मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना एक ओर मामला एक अलग जगह पर स्थापित किया गया। इस प्रकार से आक्षेपित निर्णय इस न्यायालय के निर्णय रामलाल नारंग (सुप्रा) व के. चन्द्रशेखर (सुप्रा) को देखते हुए अखंडनीय है।

5. निर्विवाद रूप से विधि अग्रिम अनुसंधान के लिए मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य नहीं करती है। आरोप पत्र दाखिल करने के बाद भी अग्रिम अनुसंधान करना पुलिस का वैधानिक अधिकार है। अग्रिम अनुसंधान और पुनः अनुसंधान के बीच एक अन्तर मौजूद है। जहां पुनः

अनुसंधान पूर्व अनुमति के बिना आवष्यक रूप से निषिद्ध है अग्रिम अनुसंधान नहीं।

6. आर. पी. कपूर व अन्य बनाम सरदार प्रताप सिंह कैरों व अन्य (1961) 2 एस सी आर 143 में इस न्यायालय ने निम्न शर्तो में विधि को निर्धारित किया है

"अतिरिक्त पुलिस महानिरीक्षक जिस को सेठी की शिकायत भेजी गई थी वह निःसन्देह एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी से उच्चतर रैंक का पुलिस अधिकारी था। सरदार हरदयाल सिंह पुलिस उपाधीक्षक सीआईडी अमृतसर भी एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी से उच्चतर रैंक का अधिकारी था। इसलिए ये दोनों अधिकारी उस पूरे स्थानीय क्षेत्र में शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं जहां उन्हें नियुक्त किया गया था जैसा कि उनके पुलिस स्टेशन की सीमा के भीतर एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि सम्बन्धित पुलिस अधिकारी सोचता है कि मामले का अनुसंधान सीआईडी द्वारा किया जाना चाहिए भले ही कारण हमें पसंद नहीं हो तो भी यह नहीं का जा सकता कि अपनाई गई प्रक्रिया अवैद्य थी।"

7. यह तर्क देना सही नहीं है कि अनुसंधान एक भिन्न ऐजेन्सी द्वारा किया गया था। सीआईडी राज्य के जांच प्राधिकरणों का ही हिस्सा है। अग्रिम अनुसंधान के लिए निर्देश अतिरिक्त महानिदेशक पुलिस द्वारा दिया गया था। दण्ड प्रक्रिया संहिता 1972 की धारा 36 एक पुलिस अधिकारी को

जो पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी से वरिष्ठ रैंक का है पूरे स्थानीय क्षेत्र में जहां वे नियुक्त हैं समान शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार देती है जैसा कि ऐसे अधिकारी द्वारा उस थाने की सीमाओं के भीतर प्रयोग किया जा सकता है।

8. इसलिए उच्च अधिकारी को मामले में आगे का अनुसंधान करने या निर्देश देने की अनुमति थी।

9. इस मामले का यह पहलू बिहार राज्य और अन्य बनाम जे.ए.सी. सलदान्हा और अन्य (1980) 1 एससीसी 554 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय में कवर किया गया है जिसमें यह कहा गया था।

"19. यह प्रावधान किसी भी तरह से धारा 173(8) में दिये गये प्रावधान के अनुसार न्यायालय में रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद मामले की अग्रिम अनुसंधान करने की अनुसंधान अधिकारी की शक्ति को प्रभावित नहीं करता है, इसलिए उच्च न्यायालय ने यह मानने में त्रुटि की कि अधिनियम की धारा 3 के तहत अधीक्षण की शक्ति का प्रयोग करने में राज्य सरकार के पास मामले में अग्रिम अनुसंधान का निर्देश देने की शक्ति का अभाव है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए हमने धारा 156 (2) में निहित प्रावधानों को अवलोकन से बाहर रखा है कि किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के अनुसंधान जिसमें ऐसे अधिकारी से वरिष्ठ रैंक का पुलिस अधिकारी भी शामिल है पर इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है कि ऐसे अनुसंधान अधिकारी के पास अनुसंधान करने का कोई

क्षेत्राधिकार नहीं था अन्यथा वह प्रावधान प्रत्यर्थी 1 की ओर से उठाये गये प्रष्न का एक संक्षिप्त उत्तर होता।

उपकार सिंह बनाम वेदप्रकाश(2004 13 एससीसी 292 देखें।

10. रामलाल नारंग (सुप्रा) में यह न्यायालय एक ऐसे मामले से संबंधित था जिसमें दो षडयंत्रों का आरोप लगाया गया है जिसमें एक बडी साजिश का हिस्सा रहा। दो अनुसंधान किये गये इस न्यायालय ने यह मत देते हुए कि कानून मे अग्रिम अनुसंधान की अनुमति है। यह कहते हुए यह माना कि मजिस्ट्रेट के पास इस मामले में अग्रिम अनुसंधान का निर्देश देने का स्वविवेक है भले ही उसने अपराध का प्रसंज्ञान लिया हो।

ऐसी आलोचना कि पुलिस द्वारा अग्रिम अनुसंधान से न्यायालय के समक्ष लम्बित कार्यवाही पर असर होगा वास्तव में बहुत अधिक सार्थक नहीं है क्याेंकि पुलिस जो भी कर सकती है आगे की कार्यवाही के संबंध में अन्तिम विवेक मजिस्ट्रेट के पास है वह अन्तिम बात जो मजिस्ट्रेट के पास है अग्रिम अनुसंधान करने के लिये पुलिस की शक्ति के किसी भी अत्यधिक उपयोग या दुरूपयोग के खिलाफ पर्याप्त सुरक्षा है। हालांकि हमें यह कहने के लिए नहीं समझा जाना चाहिए कि पुलिस को न्यायालय के समक्ष लम्बित कार्यवाही कि अनदेखी करनी चाहिए ओर सामने आने वाले हर नये तथ्य की जांच करनी चाहिए जैसे कि किसी अपराध का न्यायालय द्वारा कोई संज्ञान ही नहीं लिया गया हो। हमारा मानना है कि मजिस्ट्रेट व न्यायपालिका की स्वतंत्रता के हित में आपराधिक न्याय प्रशासन की

सुचिता के हित में और ऐसे प्रशासन के विभिन्न चरणों को सौपें गये विभिन्न एजेन्सियों और संस्थानों के सामूहिक हित में आमतौर पर यह वांछनीय होगा कि पुलिस न्यायालय को सुचित करे और औपचारिक अनुमति लें तथा नये तथ्य सामने आने पर अग्रिम अनुसंधान करे।

अग्रिम अनुसंधान करने के लिए पुलिस प्राधिकारी की शक्ति को स्वीकार करते हुए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 में की गयी इस आशय की टिप्पणी अवलोकनीय है।

हमारे मत में इस बात के होते हुए भी कि 1898 की संहिता की धारा 173 के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर एक मजिस्ट्रेट ने अपराध का प्रसंज्ञान लिया था जिसमें आगे का अनुसंधान करने का पुलिस का अधिकार समाप्त नहीं हुआ था और पुलिस जब भी आवश्यक समझें और जब नयी सूचना उनके सामने आये तो ऐसे अधिकार का प्रयोग कर सकती है। जहां पुलिस अग्रिम अनुसंधान करना चाहती हो तब पुलिस अग्रिम अनुसंधान करने के लिए औपचारिक अनुमति मांग कर न्यायालय के प्रति अपना सम्मान और आदर व्यक्त कर सकती है।

11. यहां तक कि पुलिस अधिकारी द्वारा किये गये स्वतंत्र अनुसंधान के सम्बन्ध में भी यह देखा गया है।

हमारे विचार इस बात के बावजूद कि मजिस्ट्रेट ने 1898 की संहिता की धारा 173 के तहत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का प्रसंज्ञान लिया

था पुलिस का अग्रिम अनुसंधान करने का अधिकार समाप्त नहीं हुआ था और पुलिस इस तरह के अधिकार का प्रयोग जितनी बार हो सके कर सकती थी। जब उसकी जानकारी में नई सूचना सामने आती हो जहां पुलिस अग्रिम अनुसंधान करना चाहती हो पुलिस अग्रिम अनुसंधान करने के लिए औपचारिक अनुमति की मांग कर न्यायालय के प्रति अपना सम्मान और आदर व्यक्त कर सकती है।

12. यह ऐसा मामला नहीं है जहां अनुसंधान किसी अलग षडयंत्र के सम्बन्ध में किया गया हो। चूंकि अनुसंधान के तरीके और ढंग के सम्बन्ध में स्थानीय पुलिस स्टेशन के अधिकारी के खिलाफ आरोप लगाये गये थे इसलिए अग्रिम अनुसंधान का निर्देश दिया गया था। इसकी जानकारी न्यायालय को दी गई थी। यद्यपि कोई स्पष्ट अनुमति नहीं दी गई थी लेकिन प्रकट होता है कि ऐसी अनुमति आवश्यक निहितार्थ रूप से दी गई थी क्योंकि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अग्रिम कार्यवाही पर रोक लगा दी गई थी। यह मामला ऐसा भी नहीं है कि जहां दो अलग-अलग न्यायालयों में दो आरोप-पत्र दायर किये गये हो। जिन मामलों की जांच सीआईडी द्वारा की गई थी उनको विचारण के लिये निर्दिष्ट न्यायालय चित्तूर में स्थित है। इस प्रकार से उपरोक्त स्थिति में सत्र न्यायाधीश ने तिरूपति न्यायालय में लम्बित मामले को चित्तूर के निर्दिष्ट न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया है। चित्तूर न्यायालय ने ओर अपराधों के संबंध में प्रसंज्ञान भी ले लिया था।

13. उच्च न्यायालय व श्री राय के द्वारा के. चन्द्रशेखर (सुप्रा) के

मामले में किया गया भरोसा गलत है। इसमें राज्य की सहमति से अनुसंधान केन्द्रीय जांच ब्यूरो के द्वारा की गई थी। हालांकि राज्य ने इसे वापिस ले लिया। उसमें विचारण के लिये जो प्रश्न उठा वह यह था कि क्या राज्य के लिये ऐसा करना अनुमत था। उक्त मुद्दे पर उत्तर नकारात्मक में यह कहते हुए दिया गया कि जांच अधिकारी अनुसंधान पूर्ण करने के लिए निर्देषित किया जाना चाहिए था। उपरोक्त स्थिति में निम्न राय व्यक्त की गई थी-

"24 उपरोक्त धारा को स्पष्ट रूप से पढने से यह स्पष्ट होता है कि अनुसंधान पूरा होने पर उपधारा (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी पुलिस को उपधारा (8) के तहत अग्रिम अनुसंधान का अधिकार है लेकिन नये सिरे से नहीं। केरल सरकार भी इस स्थिति के प्रति सचेत थी। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रारंभ में उनकी अधिसूचना दिनांक 27.06.1996 थी। पहले उद्धृत के व्याख्यात्मक नोट में कहा गया था कि मामले की पुनः जाच का आदेश देने के लिये सार्वजनिक हित में सहमति वापिस ली जा रही थी। राज्य के पुलिस अधिकारियों की एक विशेष टीम ने संशोधित अधिसूचना के द्वारा पहले यह स्पष्ट कर दिया कि वे आगे की जांच चाहते थे। आगे जब एक विशेषण के रूप में उपयोग किया जाता है का शब्दकोष अर्थ अतिरिक्त अधिक पूरक है। इसलिए आगे की जांच पिछली जांच की निरन्तरता है ना कि कोई नई जांच या दोबारा शुरू की जाने वाली जांच जो पहले की जांच को पूरी तरह से खत्म कर दे। इस निष्कर्ष को

निकालने में हमने इस तथ्य से प्रेरणा ली है कि उपधारा (8) में स्पष्ट रूप से परिकल्पना की गई है कि आगे की जांच पूरी होने पर जांच एजेन्सी को मजिस्ट्रेट को एक ''अतिरिक्त रिपोर्ट" अग्रेषित करनी होगी ना कि नई रिपोर्ट या रिपोर्ट। ऐसी जांच के दौरान प्राप्त साक्ष्य एक बार जब इसे स्वीकार कर लिया जाता है-और काजी लेन्डुप दोरजी के मामले को स्वीकार किया जाना चाहिए की अधिनियम की धारा 6 के तहत की गई सहमति के अनुसार सीबीआई द्वारा की गई जांच सहमति लेने के बावजूद भी पूरी की जानी है और यह है कि आगे की जांच ऐसी जांच की निरन्तरता है जो धारा 173 की उपधारा (8) के तहत एक ओर पुलिस रिपोर्ट में समाप्त होती है। इसका मतलब यह है कि तुरन्त मामले में सहमति वापिस ले लेने से राज्य पुलिस को आगे बढने का अधिकार नहीं मिलेगा। इसे अलग ढंग से कहे तो यदि कोई आगे की जांच की जानी है तो वह अकेले सीबीआई ही ऐसा कर सकती है क्योंकि उसे राज्य सरकार द्वारा मामले की जांच सौंपी गई थी। परिणामस्वरूप राज्य पुलिस को मामले की आगे की जांच करने में सक्षम बनाने के लिये सहमति वापिस लेने के लिए जारी की गई अधिसूचना स्पष्ट रूप से अमान्य है कानून की दृष्टि से अस्थिर है। हमारे इस निष्कर्ष के अनुसार हमें इस प्रश्न पर विचार करने की आवष्यकता नहीं है कि क्या सामान्य धारा अधिनियम की धारा 21 धारा 6 के तहत दी गई सहमति पर लागू होती है और क्या 1994 के अपराध संख्या 246 की जांच के लिये ली गई सहमति केरल राज्य द्वारा पहले से दी गई सामान्य सहमति को ध्यान में रखते हुए अनावष्यक थी हम यहां उक्त अनुपात का

कोई अनुप्रयोग नहीं देखते है।

14. इस प्रकार से हमारी राय है कि उच्च न्यायालय का फैसला बरकरार रखे जाने योग्य नहीं है।

15. श्री राय ने तर्क प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने आवेदन को रद्द करने में प्रत्यर्थी द्वारा उठाये गये अन्य विवादों पर ध्यान नहीं दिया। हमने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत प्रत्यर्थी द्वारा दायर किये गये आवेदन की जांच की है और संतुष्ट हैं कि प्रत्यर्थी ने केवल दूसरी जांच पूरी होने पर दायर आरोप पत्र की वैद्यता का ही तर्क उठाया है।

16. उपरोक्त वर्णित कारणों से अपील स्वीकार की जाती है।

प्रकरण में विचार किये गये न्यायिक दृष्टान्त

1. आर. पी. कपूर व अन्य बनाम सरदार प्रताप सिंह कैरों व अन्य (1961) 2 एससीआर 143

2. बिहार राज्य व अन्य बनाम जेएसी सल्दान्हा व अन्य (1980) 1 एससीसी 554

3. उपकार सिंह बनाम वेदप्रकाश (2004) 13 एससीसी 292

4. रामलाल नारंग बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) (1979) 2 एससीसी 322

5. के. चन्द्रशेखर बनाम केरल राज्य व अन्य (1998) 5 एससीसी 223

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल सुवास की सहायता से अनुवादक श्री पवन कुमार वर्मा न्यायिक अधिकारी द्वारा किया गया है

अस्वीकरण यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।